ISSN: 2230-7850 IMPACT FACTOR : 5.1651 (UIF) VOLUME - 7 | ISSUE - 4 | MAY - 2017

INDIAN STREAMS RESEARCH JOURNAL

अवध अख़बार में प्रकाशित कविताओ में राष्ट्रीय चेतना

हिमांशु बाजपेयी

पीएचडी शोधार्थी , म.गां.अं.रा.हि.वि.वि वर्धा, महाराष्ट्र.

प्रस्तावना :

इस शोध पत्र का उद्देश्य लखनऊ से प्रकाशित होने वाले उर्दू रोज़ाना *अवध अख़बार* में प्रकाशित शाइरी में राष्ट्रीय चेतना के तत्त्वों की पड़ताल करना है. *अवध अख़बार* उत्तर भारत का पहला उर्दू अख़बार था जो 1858 में हिन्दुस्तान की आज़ादी की पहली लड़ाई के एक साल बाद प्रकाशित होना शुरू हुआ. यह अख़बार भारत को आज़ादी मिलने के बाद 1950 तक प्रकाशित होता रहा. समाचारों एवं विचारों के अलावा इस अख़बार में नियमित तौर पर उर्दू शाइरी छपती थी. अख़बार में छपने वाली शाइरी का वितान काफी व्यापक होता था. उपनिवेशवाद के खिलाफ आज़ादी के संघर्ष और राष्ट्रीय चेतना के विकास के लिहाज़ से इसमें प्रकाशित होने वाली राजनीतिक शाइरी का एक अलग रंग है. प्रस्तुत शोध पत्र *अवध अख़बार* में प्रकाशित उर्दू शाइरी में अभिव्यक्त राजनीतिक आयामों की जांच-परख का एक प्रयास है.

अवध अख़बार की शाइरी में उपनिवेशवाद विरोधी चेतना और धर्म निरपेक्षता एक बुनियादी उसूल है. हलांकि, अख़बार धार्मिक सत्ताओं के खुले नकार की घोषणा नहीं करता. धर्मनिरपेक्षता से लेकर आधुनिक, प्रगतिशील, देशज संस्कृति का प्रक्षेपण और राष्ट्रीय चेतना के सर्वांगीण उत्थान की हिमायत के विविध रंग इसकी शाइरी में देखने को मिलते हैं. प्रस्तुत शोध आलेख राष्ट्रीय चेतना के इन भ्रूण-तत्त्वों की पहचान और कालांतर में आधुनिक भारत के संवैधानिक मूल्यों के बतौर इनके प्रतिफलन के अन्तर्सम्बन्धों को रेखांकित करता है.

की-वर्ड्स : राष्ट्रीय चेतना, धर्मनिरपेक्षता, उपनिवेशवाद, स्वदेशी, देशज संस्कृति, आज़ादी, उर्दू शाइरी

परिचय :-

लखनऊ शहर उर्दू अदब के एक अहम केन्द्र के बतौर अठारवीं सदी से विकसित होना शुरू हुआ. 1857 की पहली जंगे आज़ादी के दौरान ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा किए गए वीभत्स दमन अभियान ने लखनऊ को राजनीतिक तौर पर पस्त किया. इसके बावजूद लखनऊ का अदबी किरदार कमोबेश सलामत रहा और इसने खुद को नए सिरे से तामीर भी किया. इसका पहला प्रमाण 1858 में नवल किशोर प्रेस की स्थापना के रूप में मिलता है.

तत्कालीन ब्रिटिश भारत में लखनऊ और दिल्ली उर्दू अदब के दो मुख्य केन्द्र थे. हालांकि, लाहौर उर्दू पत्रकारिता का एक उभरता हुआ मर्कज़ था. नवल किशोर प्रेस के संस्थापक मुंशी नवल किशोर ने लाहौर की कोहिनूर छापेख़ाने में तजुरबा हासिल किया था. लखनऊ के दो अंग्रेज़ अधिकारियों से उनकी करीबी जान-पहचान थी, लिहाज़ा मुंशी नवल किशोर ने प्रकाशन

व्यवसाय की उज्ज्वल संभावना देखते हुए लखनऊ को अपना ठिकाना चुना. लखनऊ संयुकत प्रान्त की राजधानी था. संयुक्त प्रान्त ब्रिटिश हुकूमत की जड़ों को मज़बूत करने के लिए एक रणनीतिक महत्त्व रखता था. नवल किशोर प्रेस की नज़र ब्रिटिश शासन से मिलने वाले छपाई के ठेकों पर थी. (भार्गव, 2012)

छपाई के आधार पर नवल किशोर फ्रांस के एल्पाइन प्रेस के बाद दुनिया का सबसे बड़ा छापाख़ाना था. अब्दुल हलीम शरर ने अपनी मशहूर किताब गुज़िश्ता लखनऊ में भी नवल किशोर प्रेस का ज़िक्र किया है. शरर के मुताबिक अरबी फारसी की जैसी किताबों को जिस व्यावसायिक स्तर पर छाप दिया उसे छापने के लिए हिम्मत चाहिए. (शरर, 1965)

नवल किशोर प्रेस ने उर्दू-अरबी फारसी ही नहीं बल्कि हिन्दी-संस्कृत की किताबें भी छापना शुरू किया जो लखनऊ में नया चलन था. लखनऊ आने के बाद नवल किशोर ने अपनी प्रेस सबसे पहले आगा मीर ड्योढ़ी पर लगाई. नाम हुआ- मतबा-ए-*अवध अख़बार*. फिर काम बढ़ने पर इसे रकाबगंज और गोलागंज में स्थानांतरित किया. 1861 में नवल किशोर प्रेस को पहली बार इंडियन पीनल कोड का उर्दू तर्जुमा छापने का ऑर्डर मिला. इसकी 30 हज़ार प्रतियां छपीं और इसके बाद से नवल किशोर की गणना बड़े प्रकाशकों में होने लगी. (स्टार्क, 2012)

नवल किशोर प्रेस को बड़ी मज़बूती कुरआन एवं दूसरे धर्मग्रंथों को छापने से भी मिली. पाठ्य पुस्तकें, रजिस्टर और दूसरे कानूनी काग़ज़ात तो अंग्रेज़ों के आदेश पर वे छापते ही थे. इसके अलावा उन्होने लखनऊ में पहली बार हिन्दी और संस्कृत पुस्तकों को भी बड़े पैमाने पर छापना शुरू किया. हालांकि, उस वक्त भी लखनऊ में हिन्दी और संस्कृत की किताबें छापने वाली ये अकेली प्रेस नहीं थी. पंडित बृजनाथ की समर-ए-हिन्द प्रेस और पंडित बिहारीलाल की गुलज़ारे हिन्द प्रेस हिन्दी संस्कृत की किताबें छाप रहीं थीं. 1862 के आस पास जब लखनऊ में रेल लाइन और डाक सेवा शुरू हुई तो नवल किशोर प्रेस को इससे बहुत फायदा हुआ. लखनऊ के प्रभावशाली हिन्दू और मुस्लिम यहां तक कि यूरोपियन भी इसमें काम करने लगे थे. इसकी तरक्की का अंदाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि 1862 में जब इसको शुरू हुए महज़ चार साल हुए थे तब ही इसमें 300 कर्मचारी काम करने लगे थे. काम और काम करने वाली संख्या बढ़ने पर अंततः 1870 में ये उस जगह पर स्थानांतरित हुई जिसकी पहचान इसके साथ जुड़ी है- हज़रतगंज. हज़रतगंज आने के बाद नवल किशोर ने अपना बुक डिपो जहां से किताबें बेची जातीं थीं, भी खोला. आश्चर्यजनक रूप से 1870 आते आते इस प्रेस में एक लाख बान्नबे हज़ार पेज रोज़ाना छपते थे. इस साल प्रेस का क्रेडिट बैलेंस दो लाख पचास हज़ार रूपए था. 1882 में यहां 1200 कर्मचारी काम करते थे. सालाना डाकखर्च तकरीबन पचास हज़ार रूपए का था. 1871 में कागज की खपत को पूरा करने के लिए नवल किशोर प्रेस ने लखनऊ में अपनी निजी पेपर मिल और लोहे का अपना कारखाना भी लगवाया. (स्टार्क, 2012)

शोध उद्देश्य-

1- अवध अख़बार में प्रकाशित शाइरी में राष्ट्रीय चेतना के विभिन्न घटकों की पड़ताल करना
2- अवध अख़बार में प्रकाशित शाइरी का आलोचनात्मक अध्ययन करना

शोध प्रविधि-

प्रस्तुत शोध-पत्र में शोधप्रविधि के तौर पर अन्तर्वस्तु विश्लेषण का प्रयोग करते हुए 1928 ई. के अवध अख़बार में छपी कविताओं का सोद्देश्य प्रतिदर्शन करके अध्ययन किया गया है.

अवध अख़बार : इतिहास

नवल किशोर प्रेस को अपने उर्दू अख़बार *अवध अख़बार* के लिए भी याद रखा जाएगा. ये अख़बार 26 नवंबर 1858 को शुरू हुआ. पहले ये एक साप्ताहिक अख़बार था जो 1875 से एक दैनिक अख़बार में बदल गया. उत्तर भारत का ये पहला दैनिक उर्दू अख़बार था. साथ ही ये नवल किशोर के लाभकारी प्रकाशनों में से एक था. एक ज़माने में कहावत

मशहूर थी कि हिन्दुस्तान के सभी सूबों में या तो हुकूमत के नुमाइंदे रहते हैं या नवल किशोर के. इंग्लैण्ड में प्रसिद्ध भाषाशास्त्री एडवर्ड हेनरी *अवध अख़बार* के नुमाइंदे थे. एक महत्त्वपूर्ण बात ये है आरंभिक उर्दू फिक्शन का उत्कृष्ट नमूना रतन नाथ सरशार का फसाना-ए-आज़ाद जो आज उर्दू क्लासिक्स में गिना जाता है, पहली बार इसी अख़बार में धारावाहिक रूप में छपा.(भार्गव,2012)

नवल किशोर के जीवन काल में ये अख़बार अंग्रेज़ों के प्रति किसी हद तक नरम दिखाई देता था. शायद इसलिए क्योंकि अंग्रेज़ों के सहयोग से ही नवल किशोर अपनी प्रेस लखनऊ में जमा पाए थे और अंग्रेज़ों से प्रेस को छपाई का ठेका मिलता था. इसी कारण से गंगा प्रसाद वर्मा का अख़बार *हिन्दुस्तानी* और दूसरे अख़बार इसकी आलोचना करते हुए इसके अंग्रेज़ों का चापलूस तक कहते थे. मगर इसमें कोई शक नहीं कि 92 साल के अपने लंबे जीवन में इसने कई बदलाव देखे. नवल किशोर के बाद के दौर में जब देश की राजनीति में कांग्रेस खासकर गांधी के नेतृत्व में राष्ट्रीय आंदोलन का अहम विकास हुआ उस वक्त ये अख़बार खुल कर कांग्रेस के समर्थन में खड़ा हुआ और राष्ट्रीय चेतना से ओत प्रोत सामग्री दी.

मिर्ज़ा ग़ालिब और सर सैयद जैसी बड़ी हस्तियां शुरू से ही *अवध अख़बार* के प्रशंसकों में रहीं. साथ ही इसके सम्पादकों की अपनी एक प्रतिष्ठा एक धाक रही. इसके मशहूर सम्पादकों में हादी अली अश्क, मेहदी हुसैन खां, रौनक़ अली अफसोस, गुलाम मोहम्मद तपिश, रतन नाथ सरशार, नौबत राय नज़र अब्दुल हलीम शरर, प्रेमचंद और शौकत थानवी शामिल रहे.(स्टार्क,2012)

अवध अख़बार अपनी सामग्री के लिए तो जाना गया ही अपनी भाषा के लिए भी जाना गया. अपनी शुरुआत से ही उसने उर्दू का अख़बार होने के बावजूद उस भाषा को तरजीह दी जिसे हम हिन्दुस्तानी के करीब मान सकते हैं. बाद के दिनों में तो अख़बार की भाषा और विकसित होती गयी. साइमन कमीशन की भारत यात्रा के दौरान इस अख़बार ने जिस तरह के बाग़ी तेवरों का परिचय दिया वो अपने आपमें एक मिसाल है.

राष्ट्रीय चेतना: सैद्धांतिक विवेचन एवं विश्लेषण-

ब्रिटिश भारत में भ्रूणावस्था में आकार पाने वाली राष्ट्रीय चेतना का सर्वाधिक अहम घटक उपनिवेशवाद विरोधी विचार है. बिपन चंद्र इस राष्ट्रीय चेतना की निर्मिति में मिथकीय नायकों के महिमामंडन और तत्कालीन राजनीतिक संघर्ष की अनदेखी के अन्तरसम्बन्धों की पड़ताल करते हैं. बिपन अपने विश्लेषण में इस तथ्य को उजागर करते हैं कि ''साहित्य में उत्तरी भारत में नील संघर्ष की विवेचना करने वाले उग्र, वास्तविक तथा आधुनिक राष्ट्रवादी नाटक 'नील दर्पण' का न तो मंचन हुआ और न ही उसे छपवा कर बेचा गया. दूसरी ओर, पृथ्वीराज तथा हक़ीक़त राय पर केन्द्रित लोकप्रिय नाटकों द्वारा राष्ट्रवाद की भावना को जागृत किया गया.'' साथ ही, ''मुस्लिम संप्रदायवादियों ने भी अपने नायकों का पृथक निर्माण किया, उनमें अधिकतर वे मुजाहिद थे जिन्होने जिहाद किया था.'' (चंद्र, 2011)

राष्ट्रीय चेतना में उपनिवेशवाद विरोधी मज़बूत, सतत और अहम धारा का मूल्यांकन करते हुए मिथकों के निर्माण और तत्कालीन वास्तविक राजनीतिक संघर्षों के जीवंत और जुझारू चरित्रों के आख्यान के बीच 'सुविधाजनक चुनाव की राजनीति' को एक महत्वपूर्ण प्रस्थान बिन्दु बनाया जाना चाहिए. ब्रिटिश साम्राज्य हिन्दुस्तानी शासन प्रशासन की सारी सरचनाओं को 1857 के बाद विखण्डित कर चुका था और उनका उपनिवेशीकरण कर चुका था. सांस्कृतिक और बौद्धिक मोर्चे पर साम्राज्यवादी शासन को वैधानिकीकरण के लिए भारतीयों के एक अभिजात्य हिस्से की सहमति की आवश्यकता थी. 1857 की पहली आज़ादी की लड़ाई ने यह साबित कर दिया था कि साम्राज्यवादी शासन को कोई ख़ुशफहम सहूलियत नहीं मिलने वाली थी. राष्ट्रीय चेतना भले ही प्रारम्भिक शक्ल मे मौजूद रही हो लेकिन यह आने वाले भारतीय नवजागरण की पूर्व-पीठिका थी. अंग्रेज़ों की 'फूट डालो और राज करो' की कुटिल नीति उनके क्रूर मंसूबों का प्रतिफलन थी. इसीलिए, उन्हे राष्ट्रवाद की एक ऐसी धारा की भी ज़रूरत पड़ रही थी जो कमोबेश उनके अनुकूल हो. एक ऐसी धारा जो भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद के प्रत्यक्ष और सक्रिय प्रतिरोध से बचती हो और मिथकीय नायकों और अतीत के गौरवगान में उलझ कर रह जाती हो. इसका सबसे बड़ा परिणाम ये हुआ कि इस राष्ट्रवाद में उपनिवेशवाद से

दुशमनी मोल लेने का कोई ख़तरा नहीं था. इसलिए ब्रिटिश साम्राज्य को कोई चुनौती भी नहीं मिलती थी और ये भारतीयों का सांप्रदायिक आधार पर विभाजन भी कर देता था. ''अंग्रेज़ों के विरूद्ध निर्णायक लड़ाई वाले 1857 के विद्रोही नायकों—बहादुर शाह, रानी झांसी, नाना साहब, तात्या टोपे, फैज़ाबाद के मौलाना हमीदुल्ला, कुंवर सिंह—संथाल विद्रोहियों, दीवान मूलराज वासदेव फड़के, चापेकर बंधुओं, ख़ुदीराम बोस, कल्पना दत्त और नील के दंगों के नायक रानी जिंदन'' आदि को ऐतिहासिक नायकों के बतौर राजनीतिक औजार बनाने का चुनाव नहीं किया गया. इनके बरक्स ऐसे नायकों की मिथकीय पहचान बनाई गई जिन्होने मध्यकाल में मुग़लों के ख़िलाफ़ लड़ाई लड़ी थी. उपनिवेशवाद विरोधी आंदोलन में साम्प्रदायिकता के बीज इन्ही तत्वों में छिपे हुए हैं.

अवध अख़बार में प्रकाशित होने वाली शाइरी में राष्ट्रीय चेतना की निर्मिति करने वाले कौन कौन से घटक उपस्थित थे, नीचे इसका विश्लेषण किया गया है-

उपनिवेशवाद विरोधी स्वर-

प्रस्तुत शोध पत्र में 1928 में प्रकाशित शाइरी का अन्तर्वस्तु विश्लेषण किया गया है. एक साल की शाइरी का चुनाव इस शोध की सीमा भी है. इसकी वजह यह है कि 1928 तक अपने शुरुआती विचलन के बावजूद *अवध अख़बार* अंग्रेजी साम्राज्यवादी शासन व्यवस्था और भारतीयों को उपनिवेशवादी मानसिकता की गुलामी की ज़ंजीरों में जकड़े जाने के खिलाफ़ एक प्रतिनिधि स्वर बन चुका था. सन 1928 भारतीय इतिहास का एक ऐसा काल है जब अंग्रेजी शासन ने अपनी वैधानिकता बचाने के लिए साइमन कमीशन का गठन किया था और जॉन साइमन को भारतीयों से बातचीत के लिए हिन्दुस्तान भेजा था.

साइमन कमीशन का विरोध *अवध अख़बार* ने अपने ठेठ देशज अंदाज़ में किया. 21 जनवरी 1928 की सुबह *अवध अख़बार* ने अपने पहले पन्ने पर एक नज़म छापी जिसका उनवान था होली. इस नज़्म की शुरूआत ही इस पंक्ति से होती है- ''भारतीय नहीं खेलेंगे साइमन कमीशन से होली.'' होली का त्योहार मनाने में अभी भी कम से कम दो माह का समय बाक़ी है लेकिन साइमन कमीशन के आगमन के चलते आने वाला होली का त्योहार साम्राज्यवादी शासन के प्रतिरोध के रंग में रंग गया है और इस नज़्म में घोषणा की जाती है भारतीय अपने राष्ट्रीय हितों के विधाता ख़ुद हैं और वे साइमन कमीशन से किसी तरह का कोई तालल्लुक रखना पसंद नहीं करेंगे. इस नज़्म में जहां तत्कालीन प्रमुख राष्ट्रीय नंतृत्व महात्मा गांधी, डा. असारी, मालवीय, सप्रू, के साइमन कमीशन से ख़फा होने का ज़िक्र किया है. यह होली राजनीतिक रंगों में रंगी हुई होली है जहां होली के विविध खिलखिलाते रंगों का इसलिए इंकार किया जाता है कि साइमन कमीशन एक साम्राज्यवादी कुचाल है. नज़म मे साइमन कमीशन पर व्यंग्य करते हुए कहा गया है- अबीर गुलाल कुछौ नहीं लाए, ख़ाली है उनकी झोली/होली खेलन का आए हैं मानो करत ठिठोली. यह अबीर गुलाल न लाने का रंज असल में अंग्रेज़ी शासन की साम्राज्यवादी क्रूरताओं और उनके खोखले वादों का प्रतीक है, यहां यह बात रेखांकित की जानी चाहिए हिन्दुस्तानी जब होली खेलते हैं तो पड़ोसियों से मिलन के बतौर उनके घर जाते हैं लेकिन अंग्रेजी शासन के नुमाइंदा साइमन कमीशन जब भारत आता है तो *अवध अख़बार* के मुताबिक उनकी झोली खाली है और जीवन में उत्सव के रंग बिखेरने वाले इस पवित्र त्योहार के वक्त भी भारतीयो को आज़ादी का अबीर गुलाल लगाना उनके बस में नहीं है, इस नज़्म में यह कहा गया है कि और तो और अंग्रेज़ी हुकूमत के इस साइमन नामक नुमाइंदे में भारतीयों के लिए कोई प्रेम भाव तक नहीं है और शाइर के मुताबिक ये नुमाइंदे भारतीय राष्ट्रीय हितों के बारे में कुछ भी नहीं जानते, टाल मटोल भरी बातें करते हैं और इसीलिए नज़्म में 'भारतीयों से सुराज हासिल करने का आह्वान किया जाता है. इस सुराज के बग़ैर होली के विविध रंग खिलखिलाएंगे नहीं चटख नहीं होगें और भारत की विविध समुदायों और राष्ट्रीय अस्मिताओं के लोग कभी अमन चैन व खुशहाली से जी नहीं पाएंगे. इस नज़्म का भाषिक और भावनात्मक पक्ष भारतीयता की देसज संस्कृति का प्रतिनिधि प्रस्तुतिकरण है. नज़्म में हिन्दुस्तानी और अवधी का प्रयोग किया गया. जिसमें 'हिन्द की हिफ़ाज़त के लिए सखियां मिल जुल कर टोली बना रहीं हैं और इस नज़म में अंत में कांग्रेस के नेतृत्व पर निशर्त आस्था और भरोसा जताया गया है, और भारतीयों को आगाह किया गया है कि वे किसी तरह से

साइमन कमीशन के पास न फटकें क्योंकि असलियत में साइमन कमीशन गोली खिलाते हैं होली नहीं खेलते. (नज़्म, 1928)

देशज संस्कृति में मेहमान के आवभगत की परंपरा है और माला और रोली लगाकर स्वागत किया जाता है लेकिन अंग्रेज भारतीयों के ज़बरदस्ती के मेहमान और लुटेरे और दमनकारी शासक बने हुए हैं इसलिए किसी तरह का शिष्टाचार भी गवारा नहीं है ''न हम इनसे सील बढ़इबे न हम खेलब होली, आवभगत हम नाहीं करबे, और न चढ़इबे रोली. नज़्म में तुर्क फ़ारसी हिन्दू बौध सिन्धी के साथ मध्यम वर्गीय पेशों में शामिल लोगों जैसे वकील बैरिस्टर नाज़िर आदि को इस सुराज के संकल्प में आमंत्रित किया गया है.

धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र में आस्था- भारत जैसे विविधतापूर्ण और विशाल देश को राष्ट्रीयता के सूत्र में बांधने के लिए ज़रूरी है कि देश के अवाम की गहरी आस्था धर्मनिरपेक्षता के मूल्य में हो. क्योंकि जहां इतने अधिक धर्म और सम्प्रदाय हैं वहां एक राष्ट्र की अनुभूति तभी मानस में जगह बना सकती है जब इसके निवासी राष्ट्र-हित के मुद्दों पर धार्मिक हदों से ऊपर उठकर सोचें और इस राष्ट्र का कोई एक राष्ट्रीय धर्म न हो बल्कि इसमें सभी धर्मों के लिए समान अवसर हों. अवध अख़बार में छपने वाली शाइरी में ये भावना हमेशा केन्द्र में रही. इसने हमेशा ही साम्प्रदायिकता के विरोध और धार्मिक सद्भाव पर ज़ोर दिया. 15 जनवरी 1928 को अख़बार में शहीद-ए-काकोरी अश्फ़ाकुल्ला खां की एक ग़ज़ल छपी जो कि सांप्रदायिकता का प्रतिकार करती है. इस ग़ज़ल का एक शेर ख़ासतौर पर देश प्रेम पर ज़ोर देता है और धार्मिक झगड़ों को भुलाने की बात करता है- परसतिश उस बुते काफिर अदा की मेरा ईमां हो/मुबारक हज़रते वाइज़ को झगड़ा दीनो मिल्लत का. (मुकदमा ए काकोरी के फांसी पाए हुए मुजरिम अश्फाक उल्ला खां की ग़ज़ल, 1928)

इसके अलावा 23 सितंबर को छपे कौमी गीत में भी ज़ोरदार तरह से भारत के विविधतापूर्ण और समन्वयवादी चरित्र का अभिनंदन किया गया है- हैं शिवाले भी और गुरूद्वारे भी तेरी गोद में/ मस्जिदें भी और मीनारे भी तेरी गोद में/वीर भी गिरजे के नज़ारे भी तेरी गोद में/है सुखी भी और दुखियारे भी तेरी गोद में/ ऐ मुकद्दस मुल्क हिन्दुस्तान वंदे मातरम. (क़ौमी गीत, 1928)

देश-प्रेम की उत्कट भावना- राष्ट्रीय चेतना के प्रसार के लिए ज़रूरी है कि एक देश के निवासी अपने देश के प्रति गहरा अनुराग साझा करते हों. ये साझा देशप्रेम उन्हे एक राष्ट्र के तौर पर संगठित करने में अहम भूमिका निभाता है. अवध अख़बार में छपने वाली अधिकांश शाइरी देश-प्रेम की भावना से ओत-प्रोत होती थी. 27 मई को तराना-ए-वतनपरस्त नाम से प्रकाशित कविता इसी भाव की अभिवयक्ति करती है- मुल्क पर कुरबान हो मरने की कुछ परवा ना कर/दिल है पहलू में तो पैदा हिम्मते मरदाना कर/जलके खाकतर हो तू शम्मे वतन पर दहर में/ नाम इस महफिल में रौशन सूरते परवाना कर. 23 सितंबर को प्रकाशित हिन्दुस्तानी कौमी गीत भी इसी तरह के जज्बे उभारता है- तुझसे कायम है हमारी शान वंदे मातरम/तू हमारा है कदीम स्तान वंदे मातरम/तुझपे हम सौ जान से कुरबान / ये तेरे जल थल हरे मैदान वंदे मातरम. (तराना-ए-वतनपरस्त, 1928)

राष्ट्रीय नायकों का गौरव गान- किसी भी राष्ट्र के लिए उसके राष्ट्रीय नायक होना अति महत्तवपूर्ण है जिस पर उस राष्ट्र के निवासी एक जैसा गौरव-बोध महसूस कर सकें. ये राष्ट्रीय नायक उस राष्ट्र को राजनैतिक चेतना-सम्पन्न भी करते हैं. अवध अख़बार अपनी शाइरी में राष्ट्रीय नायकों के महिमामंडन पर भी ज़ोर देता था. 10 अक्टूबर 1928 को छपी पॉलिटिकल ग़ज़ल के दो शेर देखें- वफा-ए-दासो गंगाधर का सिक्का/वतन के ज़र्रा ज़र्रा पर जमा है/ रिशी साबरमती का दमबखुद है/बताओ कौन अब मुशकिलकुशा है. (पॉलिटिकल ग़ज़ल , 1928)

समाज-सुधार की भावना- राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में समाज सुधार की महती भूमिका है. भारत जैसे विविधतापूर्ण समाज में ये महत्तवपूर्ण है कि राष्ट्र एक प्रगतिशील और आधुनिक समाज का धारक हो. भारतीय राष्ट्रवाद में शुरूआती समाज-सुधार आंदोलनों का महत्तवपूर्ण योगदान है. अवध अख़बार ने भी अपनी दृष्टि इस ओर जमाए रखी. 10 जनवरी 1928 को हिन्दू बेवा शीर्षक से छपी नज़्म विधवाओं के प्रति सहानुभूति तो रखती ही है उनके साथ न्याय किए जाने को भी प्रेरित करती है. दाग़े फुर्कत की जिगर पर चोट है खाई हुई/तू चमन की है कली लेकिन है मुरझाई हुई. (हिन्दू बेवा, 1928)

इसी तरह 4 नवंबर की एक पॉलिटिकल ग़ज़ल में भी हिन्दुस्तानी समाज के पिछड़ेपन को शेर में उतारा गया है. आलम में सारे मुल्के हिन्दुस्तान जो मशहूर है/ आज वो बदनाम है नादार है मजबूर है. (पॉलिटिकल ग़ज़ल, 1928)

उपसंहार- उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि अवध अख़बार में छपने वाली शायरी में राष्ट्रीय चेतना का निर्माण करने वाले विविध अवयव उपस्थित हैं. अपनी अन्तर्वस्तु में समाचारों की तरह शाइरी के माध्यम से भी ये अख़बार समाज में राष्ट्रीय चेतना के प्रचार प्रसार में महत्तवपूर्ण भूमिका निभा रहा था. चूंकि उस दौर में उर्दू का एक बहुप्रसारित और सम्मानित अख़बार था इसलिए इसमें छपने वाली शाइरी चेतना के प्रचार प्रसार के सन्दर्भ में महत्त्वपूर्ण थी. शाइरी का प्रभाव ख़बर की अपेक्षा अधिक तीव्र और देर तक रहने वाला होता है क्योंकि शाइरी में रोज़ाना की ख़बरों के मुक़ाबले भावों की गहराई अधिक होती है. उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद का विरोध, सामप्रदायिक सद्भाव का प्रचार प्रसार, देशज संस्कृति का समर्थन, समाज सुधार, राष्ट्रीय नायकों का निर्माण आदि उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए ये अख़बार न सिर्फ़ ख़बरों के ज़रिए बल्कि शाइरी के ज़रिए भी प्रतिबद्ध होकर काम कर रहा था.

सन्दर्भ:

1. क़ौमी गीत. (1928, सितंबर 23). *अवध अख़बार*.
2. चंद्र, ब. (2011). *आधुनिक भारत में विचारधारा और राजनीति.* नई दिल्ली: अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स.
3. तराना-ए-वतनपरस्त. (1928, मई 27). *अवध अख़बार*.
4. नज़्म. (1928, जनवरी 21). *अवध अख़बार*.
5. पॉलिटिकल ग़ज़ल . (1928, अक्टूबर 10). *अवध अख़बार*.
6. पॉलिटिकल ग़ज़ल. (1928, नवंबर 4). *अवध अख़बार*.
7. भार्गव, र. (2012). *मुंशी नवलकिशोर और उनका प्रेस.* लखनऊ: हिन्दी वांग्मय निधि.
8. मुकदमा ए काकोरी के फांसी पाए हुए मुजरिम अश्फाक उल्ला खां की ग़ज़ल. (1928, जनवरी 15). *अवध अख़बार*.
9. शरर, अ. ह. (1965). *गुज़िश्ता लखनऊ.* नई दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट.
10. स्टार्क, उ. (2012). *एम्पायर ऑफ बुक्स.* नई दिल्ली: परमानेन्ट ब्लैक.
11. हिन्दू बेवा. (1928, जनवरी 10). *अवध अख़बार*.

हिमांशु बाजपेयी
पीएचडी शोधार्थी , म.गां.अं.रा.हि.वि.वि वर्धा, महाराष्ट्र.